प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं विरासत

(Culture and Heritage of Ancient India)

By Manikant Singh

- ‘संस्कृति’ की परिधि इतनी व्यापक होती है कि इसे किसी एक परिभाषा में बाँध पाना कठिन है। इसमें खान-पान, रहन-सहन, विचार एवं दृष्टिकोण, धर्म एवं दर्शन, वैज्ञानिक चिंतन एवं तकनीकी, साहित्य एवं कला सभी शामिल होते हैं।
- भारतीय संस्कृति को विविधतामूलक माना गया है। इसका कारण यहाँ का भूगोल एवं इतिहास दोनों है। भारत में भौगोलिक एवं जलवायु संबंधी विविधता के कारण विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा आदि में बड़ा अंतर आ गया। पश्चिम भारत एवं उत्तर-पूरब के समुदायों, हिमाचल की तलहटी में बसने वाले, मैदानी भाग में रहने वाले तथा प्रायद्वीपीय भारत में निवास करने वाले लोगों की जीवन पद्धति में अंतर आ गया। लोगों के खान-पान, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा, उत्सव-समारोह में होने वाले अंतर ने क्षेत्रीय संस्कृति के उद्‌भव का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

- परंतु यह स्मरणीय है कि भूगोल एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जनसंख्या प्रवास में स्थाई बाधा उपस्थित नहीं कर सका। लोगों का संपर्क न केवल भारतीय उपमहाद्वीप के अंदर के क्षेत्र से, बल्कि बाहर के क्षेत्रों से भी होता रहा। विंध्य पर्वत श्रेणी प्रायद्वीपीय भारत की ओर जाने वाले मार्ग में बड़ी बाधा उपस्थित नहीं कर सकी तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में लोगों की आवाजाही वैदिकोत्तर काल से ही होती रही। हमारी पौराणिक कथाओं में ऋषि अगस्त्य तथा विंध्य पर्वत के बीच होने वाला तनाव यह दर्शाता है कि उत्तर से दक्षिण की ओर जनसंख्या का प्रवास होता रहा था। फिर प्राचीन भारत के लोग भी संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में सोच रहे थे। प्राचीन ग्रंथों में भारतीय महाद्वीप के लिए 'जम्बूद्वीप' शब्द का प्रयोग हुआ तथा संपूर्ण जम्बूद्वीप पर शासन करने वाले शासक के लिए 'चक्रवर्ती' की उपाधि सुरक्षित की गई।

- यह एक दिलचस्पी का विषय है कि 'चक्रवर्ती' का मॉडल लगभग सभी शासकों को आकर्षित करता रहा तथा छोटे-छोटे शासक भी इस उपाधि को लेकर अपने मन को तोष देने का प्रयास करते रहे थे। उसी तरह अखिल भारतीयता की अवधारणा ने प्राचीन विद्वानों एवं बुद्धिजीवियों को भी आकर्षित किया है। कालिदास की 'मेघदूतम्' रचना से यह ज्ञात होता है कि कालिदास को भारत के भूगोल का कितना ज्ञान था। इस प्रकार, भौगोलिक एवं जलवायु संबंधी विविधता ऋषियों एवं व्यापारियों की गतिशीलता तथा शासकों की महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश नहीं लगा सकी। ईसा पूर्व चौथी सदी में ही मौर्यों ने एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की, जो उत्तर-पश्चिम में हिंदुकुश पहाड़ी से लेकर पूरब में बंगाल तथा दक्षिण में ब्रह्मगिरी तक फैला हुआ था। इस प्रकार भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों के बीच परस्पर संपर्क बना रहा तथा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के बीच वैचारिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा। इसलिए सांस्कृतिक विविधताओं के बीच एकता का सूत्र हमेशा विद्यमान रहा।

- भारतीय संस्कृति को स्वरूप देने में भौगोलिक कारक के साथ-साथ ऐतिहासिक कारक की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। अगर हम इस कारक पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि प्राचीन भारत में संस्कृति के स्वरूप को दिशा देने वाले ऐतिहासिक कारक के निम्नलिखित पहलू थे-
- नये सामाजिक समूहों का आगमनः- उत्तर-पश्चिम से हमेशा नवीन तत्वों का आगमन होता रहा तथा नए तत्व भारतीय जीवन में घुलते गए। सर्वप्रथम वैदिक आर्य आए। वे एक नवीन भाषा, संस्कृत, लेकर आए, परंतु उनके पास लिपि नहीं थी। वे मुख्य रूप से पशुचारक थे, परंतु भारत की भूमि पर उत्तर हड़प्पाई अथवा अन्य ताम्रपाषाणकालिक लोगों के संपर्क में उन्होंने कृषि का कार्य सीखा। उसी प्रकार, उनका अपना एक धार्मिक विश्वास था परंतु उन्होंने संभवतः उत्तर हड़प्पाई लोगों के संपर्क से यज्ञ की पद्धति को अपनाया (भारत से बाहर के आर्य यज्ञ नहीं जानते थे जबकि हड़प्पाई लोगों को यज्ञ का ज्ञान था।)।

- आगे इन्डो ग्रीक, शक एवं कुषाण जैसे बाहरी तत्वों का आगमन हुआ, परंतु शीघ्र ही वे भारतीय जीवन में घुल-मिल गए। उन्होंने भारतीय धार्मिक पंथों को अपना लिया। उदाहरण के लिए, इंडो ग्रीक शासकों ने बौद्ध धर्म को अपना लिया। इंडो ग्रीक शासक मिनांडर तथा भारतीय संत नागसेन की वार्ता प्राचीन भारत के धर्म के इतिहास में बड़ा ही दिलचस्प प्रकरण है। आगे कुषाण शासकों ने महायान बौद्ध पंथ को संरक्षण दिया। मध्य एशिया एवं पश्चिम एशिया में बौद्ध पंथ को फैलाने का श्रेय कुषाण शासक कनिष्क को दिया जाता है। फिर आगे हूणों का आगमन हुआ, तो उन्होंने भी तत्परता से शैव पंथ को अपना लिया। हूण शासक तोरमाण एवं मिहिरकुल का शैव पंथ से निकटता सर्वविदित है। इस प्रकार बाह्य तत्वों को विभिन्न धार्मिक पथों के माध्यम से आसानी से भारतीय जीवन में प्रवेश मिल गया।

- **आर्य एवं गैर-आर्य तत्वों के बीच सामंजस्य:-** वैदिक आर्य जब भारत आए थे, तो उन्होंने बड़ी उदारता से गैर-आर्य तत्वों को अपनाया था। उनकी संस्कृत में भी कई गैर-आर्य शब्द मुण्डा, द्रविड़ आदि मिश्रित मिलते हैं। उसी प्रकार, यज्ञ की पद्धति भी उन्होंने संभवतः गैर-आर्यों से ही ली थी। आगे लिपि के प्रयोग में भी हम गैर-आर्य तत्वों के प्रभाव की संभावना को अस्वीकार नहीं कर सकते।
- फिर भी धर्म के क्षेत्र में आर्य एवं गैर-आर्य तत्वों के बीच बेहतर सामंजस्य ईसा की आरंभिक शताब्दियों में देखने को मिलता है। आर्य पंथ में बहुदेववाद से एकेश्वरवाद तक का तत्व विद्यमान था और यह क्रमशः वेद से उपनिषद् तक अभिव्यक्त होता रहा। फिर आगे बौद्ध एवं जैन पंथ जैसे विरोधी पंथों का उद्भव हुआ, परंतु इन धार्मिक पंथों की जड़ भी आर्य तत्वों में ही थी।

- परंतु ईसा की आरंभिक शताब्दियों में भूमि अनुदान के कारण जनजातीय क्षेत्र में आर्य संस्कृति का प्रसार हुआ। इसके परिणामस्वरूप आर्य एवं गैर-आर्य तत्वों के बीच सामंजस्य हुआ। यह सामंजस्य धार्मिक क्षेत्र में भी व्यक्त होता है। गैर-आर्य समूह में भक्ति की अवधारणा प्रचलित थी। उदाहरण के लिए, मथुरा में एक गैर-आर्य देवता वासुदेव कृष्ण की पूजा प्रचलित थी। आगे वासुदेव कृष्ण का एक आर्य देवता, विष्णु, से एकीकरण हो गया। इस प्रकार वैष्णव पंथ का विकास हुआ। वैष्णव पंथ के मूल में भक्ति थी। उसी प्रकार एक गैर-वैदिक देवता शिव का वैदिक देवता रूद्र के साथ एकीकरण हो गया, तो फिर शैव पंथ का उद्भव हुआ। उसी काल में बौद्ध पंथ पर भक्ति का प्रभाव पड़ा, तो फिर महायान शाखा का विकास हुआ।

- भक्ति के साथ-साथ गैर-आर्य पंथों में अवतारवाद एवं मूर्तिपूजा की अवधारणा भी प्रचलित थी। इसका प्रभाव आर्य पंथों पर देखा गया। अवतारवाद की अवधारणा के माध्यम से आर्य तथा गैर-आर्य देवताओं के बीच सामंजस्य संभव हुआ। उदाहरण के लिए, विष्णु के 10 अवतार तथा शिव के 28 अवतारों की परिकल्पना की गई। ब्राह्मण पंथों ने मूर्ति पूजा को अपना लिया। बौद्ध पंथ में भी स्तूप एवं मूर्तिपूजा का प्रचलन आरंभ हो गया। जैन पंथ के अंतर्गत भी तीर्थंकरों की पूजा होने लगी। फिर गुप्त काल में चलकर मंदिर स्थापित कर ब्राह्मण देवताओं को समर्पित किया गया। इस प्रकार इस काल में भावी हिंदू धर्म का आधार निर्मित हो गया।

- **उत्तर एवं दक्षिण भारत के तत्वों के बीच सामंजस्य:-** जैसाकि हमने देखा विंध्य क्षेत्र उत्तर एवं दक्षिण के बीच स्थायी विभाजन रेखा नहीं खींच पाया तथा उत्तर एवं दक्षिण के लोगों की एक-दूसरे के क्षेत्र में आवाजाही तथा विचारों का आदान-प्रदान होता रहा। ऐसा माना जाता है कि उत्तर से पुराणों पर आधारित भक्ति का तत्व दक्षिण गया तथा संगम ग्रंथों पर आधारित प्रेम के तत्वों से जुड़ गया। अतः भक्ति का भावनात्मक पक्ष विकसित हुआ। भक्ति का यह रूप अलवार एवं नयनार संतों के अंतर्गत क्रमशः विष्णु एवं शिव भक्ति के रूप में उपस्थित हुआ। आगे रामानुज जैसे ब्राह्मण आचार्य ने इसे एक सुस्पष्ट दर्शन का आधार दे दिया तथा इसे 'विशिष्टताद्वैत' चिंतन के रूप में जाना गया। आगे दक्षिण से आए रामानन्द ने इसे उत्तर में फैलाया। फिर यह भक्ति क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार ढलती चली गई। महाराष्ट्र में इसने महाराष्ट्र धर्म का रूप ले लिया, जबकि उत्तर भारत में यह सगुण एवं निर्गुण दो धाराओं में बंट गई। निर्गुण धारा नाथपंथ, भक्ति, इस्लाम के एकेश्वरवाद तथा सूफी पंथ के बीच सामंजस्य का परिणाम थी, तो सगुण भक्ति राम एवं कृष्ण दो देवताओं को केंद्र में लेकर चलती थी। इस प्रकार क्षेत्रीय विशेषता के आधार पर भक्ति आंदोलन में विविधता आ गई, परंतु फिर भी कुछ मौलिक तत्वों में समानता बनी रही। अतः यह विविधता में एकता का उदाहरण बन गई।

- धर्म के अतिरिक्त कला एवं साहित्य के क्षेत्र में भी उत्तर एवं दक्षिण भारत के बीच आदान-प्रदान होता रहा। सर्वप्रथम अशोक ने गुफा वास्तुकला को प्रोत्साहन दिया। आगे इसका विकास चैत्य एवं विहार के निर्माण के रूप में देखा गया। वस्तुतः अधिकांश चैत्य और विहार महाराष्ट्र एवं आंध्र क्षेत्र में विकसित हुए। फिर गुफा वास्तुकला का ही विकसित रूप पहाड़ों को काटकर निर्मित मंदिरों के रूप में देखने को मिलता है और इनका विकास पल्लव शासकों के अधीन हुआ।
- आगे जब नागर शैली (कश्मीर एवं विंध्य क्षेत्रों के मध्य), द्रविड़ शैली (कृष्णा नदी एवं कन्याकुमारी के मध्य) तथा वेसर शैली (विंध्य क्षेत्र से कृष्णा नदी के बीच) जैसी स्थापत्य की तीन विभिन्न शैलियां विकसित हुईं, तो इन्होंने भी एक-दूसरे पर प्रभाव छोड़ा। उत्तर एवं दक्षिण दोनों क्षेत्रों के मंदिर में 'मंडप' के निर्माण का साक्ष्य मिलता है। उसी तरह, उत्तर भारत के मंदिर में निर्मित जगमोहन कुछ हद तक दक्षिण भारत के मंदिरों से समानता रखता है।

- जहाँ तक वेसर शैली का सवाल है तो वेसर शैली, नागर एवं द्रविड़ शैली के मिश्रण से विकसित हुई। इस प्रकार के पारस्परिक लेन-देन हम कला के अन्य रूप, मूर्तिकला एवं चित्रकला, में भी पाते हैं। वैसे तो भारत में मूर्तिकला के विकास की लंबी परंपरा रही थी तथा इसका आरंभिक रूप हड़प्पाई मूर्तिकला में पाते हैं, परंतु मूर्तिकला की एक अन्य धारा उत्तर-पश्चिम से आई तथा इसकी पहचान गांधार कला के रूप में हुई। गांधार कला, यूनानी-रोमन कला के रूप में पहचानी गई तथा आगे इस पर मध्य एशियाई एवं भारतीय तत्वों का भी प्रभाव देखा गया। इस कला के अंतर्गत मूर्तियों के शरीर-शौष्ठव एवं साज-सज्जा पर विशेष बल दिया गया था। आगे गांधार कला ने मथुरा कला तथा अमरावती कला को प्रभावित किया, परंतु साथ ही उनसे प्रभावित भी हुई।

- उसी तरह अजंता चित्रकला ने एलोरा चित्रकला तथा चोलकालीन चित्रकला पर अपना प्रभाव छोड़ा। सबसे बढ़कर कला एवं विचारों के क्षेत्र में प्राचीन भारत बाहरी विश्व के लिए खुला पड़ा था। भारतीय अंकमाला का ज्ञान अरब विद्वानों के माध्यम से पश्चिम में फैल गया। दूसरी तरफ, यूनानियों के खगोलशास्त्र के ज्ञान से भारतीय भी लाभान्वित हुए। भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला मध्य एशिया से दक्षिण एशिया तक फैल गयी। वहीं मूर्तिकला के क्षेत्र में भारतीयों ने प्राचीन यूनान एवं रोम से भी गांधार कला के रूप में उपहार प्राप्त किया। दिलचस्पी का विषय यह है कि भारतीय रामायण के कई क्षेत्रीय संस्करण दक्षिण-पूर्व एशिया में विकसित हुए। सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर इंडोनेशिया के बोरोबुदूर में निर्मित हुआ।

❑ प्राचीन भारतीय संस्कृति की उपलब्धियाँ:-

1. **विविधता में एकता का उदाहरण:-** विविधता में एकता की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम धर्म के क्षेत्र में देखने को मिलती है। जिसे आगे 'हिंदू धर्म' के नाम से जाना गया। वह कोई एक धार्मिक पंथ का प्रतिनिधित्व नहीं करता, अपितु वह विभिन्न धार्मिक पंथों का एक संघ है। इसमें ब्राह्मण पंथ, बौद्ध पंथ, जैन पंथ एवं अन्य उपपंथ अथवा उपसंप्रदाय शामिल होते गए। इसमें एकेश्वरवाद एवं बहुदेववाद, ज्ञान एवं भक्ति, योग एवं मूर्ति पूजा, अहिंसा के तत्व, पशु बलि, निराकार ईश्वर की उपासना एवं तंत्रवाद सभी शामिल हैं। तीर्थ यात्रा ने इन धार्मिक पंथों को एकता प्रदान की। सर्वप्रथम अरबी लोगों ने 'हिन्दू' शब्द को जन्म दिया तथा आगे ब्रिटिश ने 'संप्रदाय' के रूप में इसे एक पृथक पहचान दे दी।

- फिर ईसा की आरंभिक शताब्दियों में ही भारत 'अब्राहमी' (यहूदी एवं ईसाई) परंपरा के धार्मिक पंथों से भी परिचित हो गया था। उदाहरण के लिए, रोमन साम्राज्य से प्रताड़ित होने वाले यहूदियों के एक समूह ने भारत की ओर कूच किया। उसी प्रकार, ईसा की आरंभिक शताब्दी में भारत में ईसाई पंथ का आगमन हुआ था। प्रसिद्ध ईसाई संत सेंट थॉमस भारत आए। उनकी कब्र भी भारत के मद्रास में निर्मित हुई। वहीं केरल में कुछ ईसाई बस गए। उसी प्रकार ईरान में इस्लाम के आगमन के बाद कुछ जोरोस्ट्रियन भारत की ओर पलायन कर गए तथा गुजरात में बस गए। वे पारसी कहलाए तथा वे बड़े ही सफल व्यवसायी सिद्ध हुए। उसी तरह, मुस्लिम शासन की स्थापना से पूर्व ही अरब व्यापारी मालाबार तट पर बस गए। प्राचीन काल में भारतीय शासकों के द्वारा अन्य धार्मिक समूह के लोगों को प्रताड़ित किए जाने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। अपितु उन्हें धर्म के अनुपालन की स्वतंत्रता मिली।

- विविधता में एकता की अभिव्यक्ति कला, भाषा-साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में देखने को मिलती है। भाषा-साहित्य के क्षेत्र में हम प्राचीनतम भाषा संस्कृत को मानते हैं। आगे इससे पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा का विकास हुआ। फिर पूर्व मध्यकाल में क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हुआ, यथा, बांगला, उड़िया, पंजाबी, मराठी, गुजराती, हिंदी आदि। उसी प्रकार द्रविड़ समूह की भाषाओं में प्राचीनतम भाषा तमिल थी, फिर कन्नड़, तेलुगु एवं मलयालम भाषा विकसित हुई। इन सभी मुख्य भाषाओं के अतिरिक्त कई उप-भाषाएं एवं बोलियां भी प्रचलित हुईं।

2. **धार्मिक सद्भाव का वातावरणः-** विश्व के अन्य क्षेत्रों में ऐसा देखा गया है कि अगर किसी राजवंश के द्वारा एक धार्मिक पंथ को संरक्षण दिया जाता, तो अन्य धार्मिक पंथों के साथ भेदभाव किया जाता अथवा उन्हें उत्पीड़ित किया जाता, परंतु भारत में एक राजवंश के शासक अनेक धार्मिक पंथों को संरक्षण देते रहे उदाहरण के लिए, अशोक ने बौद्धों के साथ-साथ ब्राह्मणों एवं आजीवकों को भी संरक्षण दिया।

3. **धार्मिक विचारों को व्यक्त करने की आजादी:-** इस तथ्य को अमर्त्य सेन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Argumentative Indian' में व्यक्त किया है। इनके अनुसार, प्राचीन काल में सभी धार्मिक पंथ के लोग खुले रूप में एक-दूसरे के साथ शास्त्रार्थ करते थे। इस तथ्य ने भारतीय संस्कृति को अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान की।

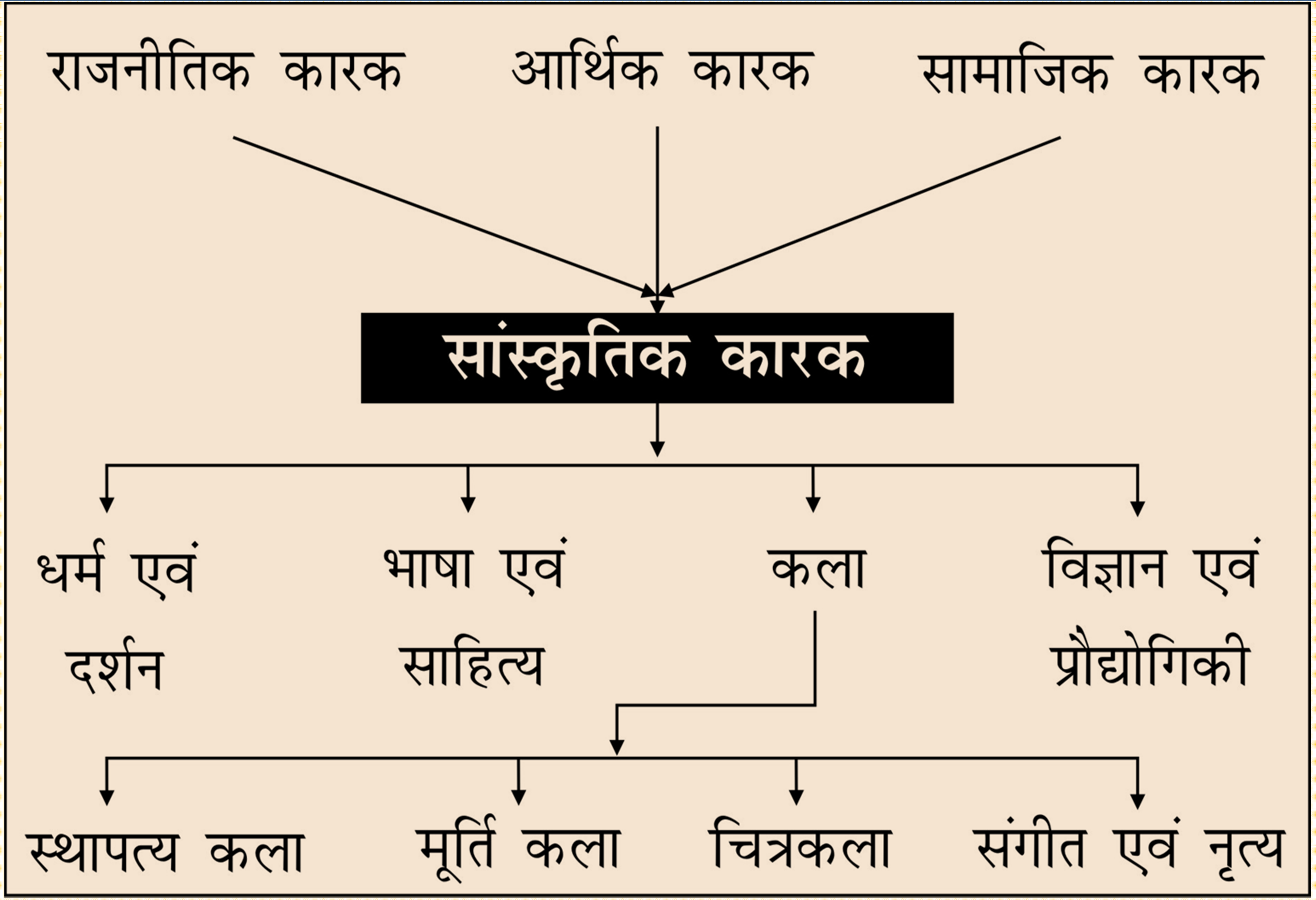

राजनीतिक कारक
आर्थिक कारक
सामाजिक कारक
सांस्कृतिक कारक
धर्म एवं दर्शन
भाषा एवं साहित्य
कला
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
स्थापत्य कला
मूर्ति कला
चित्रकला
संगीत एवं नृत्य

खंड-2

उपखंड-4

प्राचीन भारत में धर्म एवं दर्शन

(Religion and Philosophy in Ancient India)

By Manikant Singh

धर्म एवं दर्शन

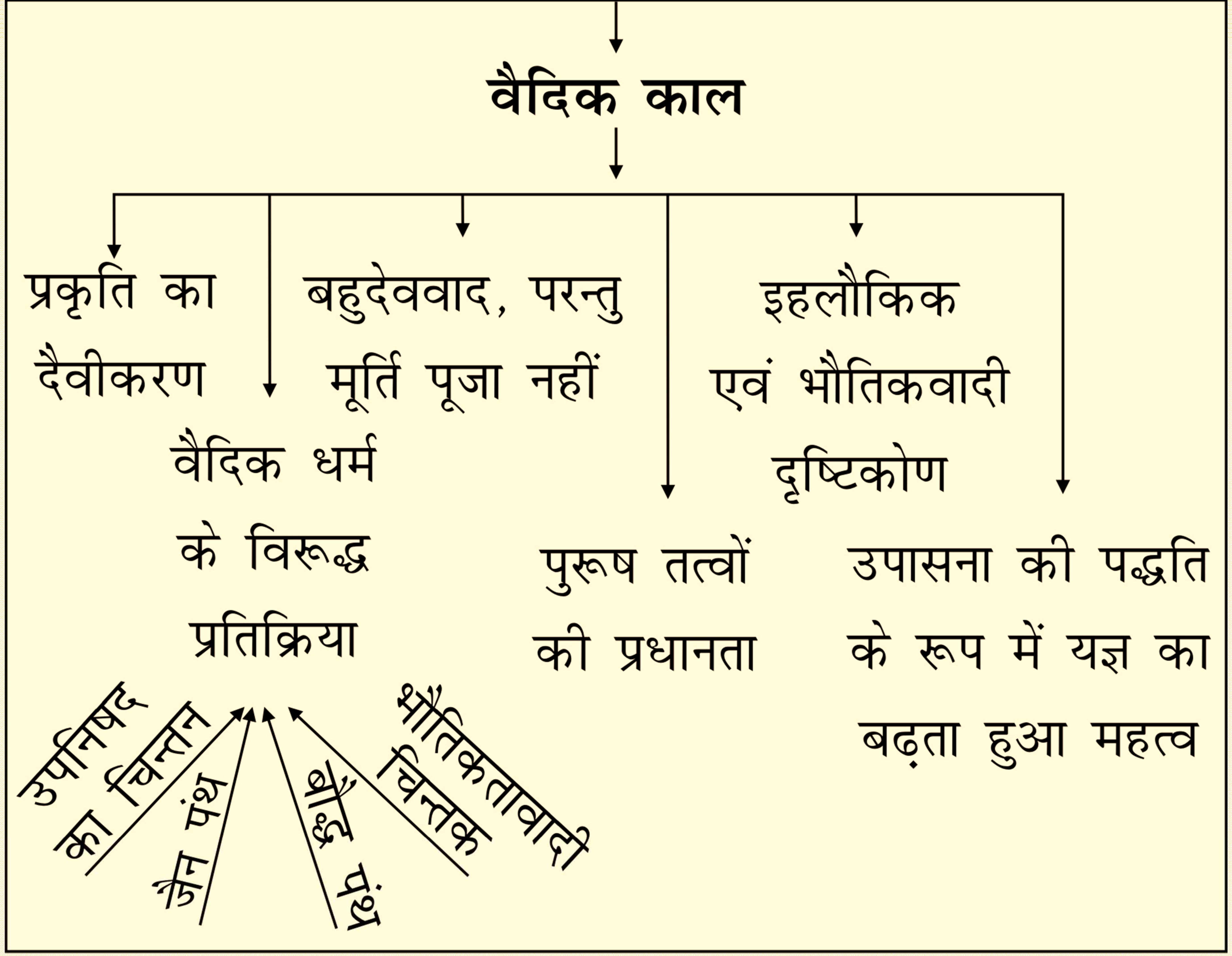

वैदिक काल
प्रकृति का दैवीकरण
वैदिक धर्म के विरूद्ध प्रतिक्रिया
बहुदेववाद, परन्तु मूर्ति पूजा नहीं
पुरूष तत्वों की प्रधानता
इहलौकिक एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण
उपासना की पद्धति के रूप में यज्ञ का बढ़ता हुआ महत्व
उपनिषद् का चिन्तन
जैन पंथ
बौद्ध पंथ
भौतिकतावादी चिन्तक

❑ वैदिक धर्म

- ऋग्वैदिक काल से उत्तर वैदिक काल तक एक जनजातीय समाज वर्ण विभाजित समाज में ढल गया था और उसी के साथ धर्म का एक स्पष्ट स्वरूप उभरकर आया। वैदिक धर्म की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं-

1. **प्रकृति का दैवीकरण-** प्रकृति की जिन गुत्थियों को वैदिक आर्य नहीं सुलझा सके, उसका उन्होंने दैवीकरण कर दिया अर्थात् उन्हें देवता मान लिया, जैसे- सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि।
2. **बहुदेववाद, परन्तु मूर्ति पूजा नहीं:-** बहुदेववाद वैदिक धर्म की सामान्य विशेषता थी तथा मंत्रों के माध्यम से विभिन्न देवताओं का आह्वान किया जाता था, परन्तु प्राचीन यूनान की तरह यहाँ मूर्ति पूजा प्रचलित नहीं थी।

3. **पुरुष तत्वों की प्रधानता-** ऋग्वैदिक काल में आर्थिक-सामाजिक आवश्यकता के अनुकूल देवताओं के स्थान का निर्धारण हुआ। ऋग्वैदिक काल में सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में इन्द्र, अग्नि और वरुण थे। इन्द्र युद्ध के देवता (पुरंदर) तथा वर्षा के देवता (पुरभिद्) थे। दूसरे प्रमुख देवता अग्नि थे क्योंकि अग्नि का उपयोग न केवल खाना पकाने के लिए, बल्कि जंगलों की सफाई के लिए भी होता था। साथ ही, वे देवता और मानव के बीच मध्यस्थ की भूमिका भी निभाते थे। वरुण को 'ऋतस्य गोप' अर्थात् प्राकृतिक नियमों का रक्षक कहा जाता था। 'ऋत्' की परिकल्पना संभवतः ऋग्वैदिक आर्यों की सबसे ऊँची आध्यात्मिक उड़ान थी। वरुण को केवल प्रार्थना अथवा यज्ञ से संतुष्ट नहीं किया जा सकता था, बल्कि उसके लिए नैतिक स्तर का ऊँचा होना भी आवश्यक था।

- उत्तर वैदिक काल तक देवताओं के स्थान में परिवर्तन आया। अब तीन सर्वश्रेष्ठ देवताओं के रूप में प्रजापति, विष्णु एवं रूद्र स्थापित हो गए। वस्तुतः उत्तर वैदिक काल तक आकर वैदिक आर्यों के जीवन की प्राथमिकताएँ बदल गईं थीं। अब वे स्थायी जीवन जीने लगे थे। उसकी आधारभूत संरचना इसी काल में विकसित हुई थी।
- वैसे ऋग्वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल में कुछ देवियों का भी जिक्र मिलता है, किन्तु उनका स्थान देवताओं से नीचे है, यथा- उषा, निशा, अरण्यानी, रात्रि आदि।

4. इहलौकिक एवं भौतिकतावादी दृष्टिकोण- वैदिक आर्य भौतिक सुख के लिए उपासना करते थे, मोक्ष के लिए नहीं। यहाँ उपासना का उद्देश्य था- प्रजा, पुत्र एवं धान्य की प्राप्ति।
5. उपासना की पद्धति के रूप में यज्ञ का बढ़ता हुआ महत्व- ऋग्वेद में प्रार्थना एवं यज्ञ दोनों का प्रचलन था, परन्तु उत्तर वैदिक काल में यज्ञ का महत्व काफी बढ़ गया। सबसे बढ़कर यज्ञ में पशुबलि और मंत्र दोनों का महत्व बढ़ जाने से यज्ञ कर्मकाण्ड प्रधान हो गया।

❑ बुद्ध कालीन धर्म

- बुद्ध काल तीव्र आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा था तथा उसी के अनुरूप धर्म भी प्रभावित हुआ। आर्थिक परिवर्तन से आशय है- कृषि एवं नगरीय अर्थव्यवस्था का विकास। वैदिक धर्म इसके अनुकूल नहीं था। एक तरफ वैदिक यज्ञ में बड़ी संख्या में पशुओं की बलि दी जा रही थी, वहीं दूसरी तरफ इस काल में कृषि अर्थव्यवस्था की माँग थी- पशुधन की सुरक्षा। उसी प्रकार, नए धार्मिक पंथों के द्वारा व्यापार को भी संरक्षण दिया जा रहा था। अब जहाँ तक सामाजिक परिवर्तनों का सवाल है, तो कहीं-न-कहीं क्षत्रिय वर्ण की महत्वाकांक्षा ब्राह्मणों से टकरा रही थी। अधिकांश धर्म सुधारक क्षत्रिय वर्ण से ही आए थे।

➢ धार्मिक पंथों की विशेषताएँ:

1. धार्मिक पंथों की बहुलता- इस काल में, बौद्ध ग्रंथ के अनुसार 62 धार्मिक सम्प्रदाय थे, जबकि जैन ग्रंथ के अनुसार 363 धार्मिक सम्प्रदाय।
2. संन्यास मार्ग का बढ़ता हुआ महत्व- इस काल में संन्यास की ओर लोगों का आकर्षण बढ़ा था। इसे 'श्रमण संस्कृति' का नाम दिया जाता है।
3. अधिकांश धार्मिक पंथों के द्वारा कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष की अवधारणा पर बल दिया गया। (इसका अपवाद भौतिकतावादी चिन्तन है।)

❑ प्रमुख धार्मिक पंथः

- **उपनिषद्**- उपनिषद् वैदिक धर्म के अन्तर्गत ही वैचारिक विकास को दर्शाता है। इसने यज्ञ अथवा पशुबलि को अस्वीकार कर दिया। इसके बदले में ज्ञान को मुक्ति का साधन माना, वह ज्ञान है- ब्रह्म एवं आत्मा की एकता का ज्ञान। इसके अनुसार, ब्रह्म और जीव दोनों एक हैं तथा मोक्ष के लिए ज्ञान आवश्यक है। उपनिषद् वैदिक धर्म के निष्कर्ष को बताता है अर्थात् वेदों का बल प्रार्थना पर था, ब्राह्मण ग्रंथ का यज्ञ पर, आरण्यक का तप पर और उपनिषद् का ज्ञान पर।

➢ **बौद्ध चिन्तन-** इस संसार के संबंध में बौद्धों की निम्नलिखित अवधारणाएँ थीं। प्रथम, यह संसार दु:खमय है अर्थात् दु:ख है, दु:ख का कारण है, दु:ख का निदान है तथा दु:ख के निदान के उपाय हैं। ये बौद्धों के चार आर्य सत्य हैं। फिर दु:ख के निदान के उपाय के रूप में 'अष्टांगिक मार्ग' का जिक्र किया गया। दूसरा, यह संसार क्षणिक है अर्थात् इसका मानना है कि प्रत्येक क्षण संसार बदलता है। तीसरा, यह संसार आत्माविहीन है, अर्थात् एक तरफ वह आत्मा के अस्तित्व को नकारता है, वहीं दूसरी तरफ वह पुनर्जन्म की अवधारणा पर बल देता है। अत: प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अगर आत्मा नहीं है, तो आखिर एक जन्म से दूसरे जन्म में क्या जाता है? बौद्ध पंथ ने इसका उत्तर प्रतिच्चसमुत्पाद के माध्यम से खोजने का प्रयत्न किया। दूसरे शब्दों में, अगर दु:ख का कारण जन्म है, तो जन्म का कारण कर्मफल रूपी चक्र है। एक जन्म से ही दूसरे जन्म में कर्म जाता है। बौद्ध धर्म में इसे कारण एवं परिणाम अर्थात् कार्य-कारण पद्धति के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। जैसे एक दीपक बुझते ही दूसरे दीपक को जला देता है, तो पहला दीपक कारण है और दूसरा परिणाम।

➢ **जैन चिन्तन-** जैनियों के अनुसार यह संसार शाश्वत है, किन्तु इसमें उत्थान भौर पतन का काल आता है। उत्थान के काल को 'उत्सर्पिणी' तथा पतन के काल को 'अपसर्पिणी' कहा गया है। माना जाता है कि उत्थान के काल में 63 शलाका पुरुष (महान पुरुष) पैदा होते हैं, जबकि पतन के काल में मानव का आकार छोटा हो जाता है। 63 शलाका पुरुष में 24 तीर्थंकर और 12 चक्रवर्ती शासक होते हैं।

- जैनियों के अनुसार, जीव और अजीव के संयोग से इस सृष्टि का संचालन होता है। वे जीव की श्रेणी में आत्मा को मानते हैं और अजीव की श्रेणी में धर्म, अधर्म, आकाश, काल (समय), पुद्‌गल (कर्म) को मानते हैं। जैनियों का उद्देश्य है जीवन को पुद्‌गल से मुक्त करना, उसे 'कैवल्य' की स्थिति माना गया है। इसके लिए वह दो प्रक्रियाओं की चर्चा करता है। प्रथम, 'संवर' - इसके लिए उसका कहना है कि जीव में पुद्‌गल के प्रवेश को रोकना पड़ेगा। दूसरा, 'निर्जरा'- इसका अर्थ है जीव में जो पुद्‌गल प्रविष्ट हो गया है, उसे नष्ट करना। इसी क्रम में काया-क्लेश पर बल दिया जाता है।

- जैन पंथ में कैवल्य को सर्वोच्च ज्ञान माना गया है। इसमें पाँच अणुव्रत अथवा महाव्रत का जिक्र मिलता है। जैनियों का एक प्रमुख चिन्तन 'स्याद्वाद अथवा अनेकान्तवाद' माना जाता है। इसके अनुसार, सत्य की अनेक अवस्थाएं होती हैं। सत्य एक है तथा अनेक हैं, स्थिर है एवं परिवर्तनशील है, इसलिए सावधानीपूर्वक बयान देना चाहिए।

- **भौतिकतावादी चिन्तन-** बुद्ध और महावीर के समकालीन चिंतकों में हम कुछ भौतिकतावादी चिंतकों को भी देखते हैं। ये चिंतक थे- अजित केशकंबलिन, पकुध कच्चापन, पुरण कश्यप, मक्खलि गोशाल, संजय बेलिट्ठपुत्त आदि। फिर आगे इन्हीं की परंपरा से चार्वाक भी जुड़ गए थे। इन चिन्तकों ने कर्म, पुनर्जन्म अथवा मोक्ष की अवधारणा में विश्वास प्रकट नहीं किया। अजित केशकम्बलिन ऐसा मानता था कि कर्म का कोई फल नहीं होता, इसलिए जैसा चाहते हो वैसा करो। वह यदृच्छावादी कहलाया। चार्वाक इसी परम्परा का है। चार्वाक ने प्रत्यक्ष अनुभव को ज्ञान का साधन माना। मक्खलि गोशाल, जो आजीवक सम्प्रदाय का संस्थापक था, नियतिवादी था अर्थात् हमारा भविष्य पूर्व निश्चित है।

- भौतिकतावादी चिंतन का सबल पक्ष यह था कि इस चिंतन में धर्मनिरपेक्षता थी। यदि यह चिंतन जीवित रह गया होता तो इसने वैज्ञानिक विचारों को प्रोत्साहन दिया होता, किंतु ऐसा नहीं हो सका। ब्राह्मणवादी तत्वों ने इन्हें दबा दिया तथा भौतिकतावाद पर प्रत्ययवाद हावी हो गया। वहीं दूसरी तरफ इसने कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया, जो तात्कालिक सामाजिक माँगों के अनुकूल था। यही वजह है कि वे समाज पर अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ पाये।

❖ छठी सदी ई.पू. के काल को बौद्धिक क्रांति का काल क्यों माना जाता है?

- उत्तर भारत में छठी सदी ई.पू. का काल आत्मान्वेषण का काल था। यह वह काल था जब लोगों ने मृत्यु के बाद के जीवन, आत्मा, ब्रह्म आदि गूढ़ प्रश्नों पर विचार करना आरंभ किया। यद्यपि छठी सदी ई.पू. में यह बौद्धिक विकास एक क्रमिक परिवर्तन का परिणाम था तथा इसकी पृष्ठभूमि आरण्यक काल से ही निर्मित होने लगी थी। फिर भी हम इसे बौद्धिक क्रांति का काल मानते हैं क्योंकि इस काल में पंथों तथा विचारों में विविधता देखी गयी।

1. यह काल वैचारिक उथल-पुथल अथवा गहन बौद्धिक चिन्तन का काल था। इस काल में जीवन के मूलभूत प्रश्नों पर विचार किया गया।
2. इस काल में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। उदाहरण के लिए, बौद्ध ग्रंथ में 62 धार्मिक सम्प्रदायों की चर्चा है, तो जैन ग्रंथों में 363 धार्मिक सम्प्रदायों की।

3. विभिन्न चिंतकों के विचारों में मतभेद अथवा भिन्नता है। कुछ कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा को मानते हैं, तो कुछ उसे अस्वीकार करते हैं। एक तरफ उपनिषद् सर्वोच्च आत्मा की बात करता है, तो दूसरी तरफ बौद्ध पंथ आत्मा के अस्तित्व को ही अस्वीकार कर देता है।

4. एक तरह से अगर देखा जाए तो यह केवल भारत में ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर बौद्धिक चिन्तन का काल रहा था। उदाहरण के लिए, इस काल में ईरान में जरथ्रुष्ट, यूनान में पायथागोरस, चीन में कन्फ्यूशियस एवं लाओत्से जैसे चिन्तक हुए।

❖ क्या बौद्ध पंथ धर्म सुधार आंदोलन के साथ-साथ समाज सुधार आंदोलन भी था?

- बौद्ध पंथ का गहरा संबंध तात्कालिक आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों के साथ जुड़ा रहा था। इसलिए यह धार्मिक आंदोलन के साथ-साथ सामाजिक आंदोलन भी सिद्ध हुआ। इसे निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है-

1. इसने यज्ञ एवं वैदिक कर्मकांड को अस्वीकार कर दिया।
2. इसने आत्मा और परमात्मा को अस्वीकार कर समकालीन धार्मिक विवाद से अपने को दूर रखने का प्रयत्न किया।
3. इसने ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए यह घोषित किया कि वर्ण व्यवस्था ईश्वर निर्मित नहीं, बल्कि मानव निर्मित है।
4. इसने महिलाओं के लिए भी बौद्ध संघ का दरवाजा खोल दिया। इतना ही नहीं, महिलाओं के प्रति बौद्ध पंथ की संवेदनशीलता 'थेरीगाथा' (भिक्षुणियों की कविता) में व्यक्त हुई है।

5. उसने शूद्रों के लिए भी निर्वाण का मार्ग खोल दिया और उन्हें संघ में प्रवेश की अनुमति दी।

6. इसने अहिंसा पर बल दिया, जिससे कृषि अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिला। अतः इसे गृहस्थों का समर्थन मिला।

7. इसने महाजनी और मुनाफाखोरी को मान्यता दी। अतः इसे व्यापारियों का भी समर्थन मिला।

❖ महात्मा बुद्ध के द्वारा किए जाने वाले समाज सुधार की क्या सीमाएँ रहीं थीं?

- इसकी निम्नलिखित सीमाएँ थीं-

1. ब्राह्मणवादी जाति व्यवस्था पर चोट करने के पश्चात् भी वे पूरी तरह उसे अस्वीकार नहीं कर पाए। कहीं-न-कहीं बौद्ध पंथ का जाति का पूर्वाग्रह बना रहा। यही वजह है कि बौद्ध संघ में सबसे अधिक संख्या सवर्णों की रही।
2. बौद्ध पंथ ब्राह्मणवादी पितृसत्तावाद के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। बुद्ध ने काफी दबाव के पश्चात् बौद्ध संघ का दरवाजा महिलाओं के लिए भी खोला था, परन्तु पुरुषों के साथ उसकी समानता स्थापित नहीं हुई। भिक्षुणियों के लिए पृथक संघ बनाया गया और उन्हें भिक्षुओं के कठोर निरीक्षण में रखा गया।

❖ **बौद्ध पंथ के प्रसार के क्या कारण थे, जिससे वह एक विश्व धर्म बन सका?**

- महात्मा बुद्ध विश्व के उन गिने-चुने सामाजिक चिंतकों में स्थापित हुए जिन्होंने ईसाई धर्म एवं इस्लाम धर्म के समान बौद्ध धर्म को एक विश्व धर्म के रूप में स्थापित किया। इसके निम्नलिखित कारण थे-

1. बौद्ध पंथ ने तात्कालिक आर्थिक समस्या का निराकरण देने का प्रयास किया, जैसे- महाजनी और मुनाफाखोरी तथा पशुधन की सुरक्षा।
2. इस पंथ ने तात्कालिक सामाजिक समस्या का निराकरण देने का भी प्रयास किया। उदाहरण के लिए, वर्ण एवं जाति व्यवस्था की अस्वीकृति।
3. इसने कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्नों को उठाया, जो 'सार्वदेशिक' एवं 'सार्वकालिक' थे। वे प्रश्न थे- दुःख, बीमारी, बुढ़ापा एवं मृत्यु।
4. बौद्ध संघ और बौद्ध भिक्षुओं के माध्यम से देश तथा देश से बाहर इसका प्रसार किया गया।
5. बौद्ध पंथ का राजाओं के समर्थन के कारण भी प्रसार हुआ, उदाहरण के लिए, अशोक, कनिष्क आदि।

❖ वर्तमान में बौद्ध पंथ की प्रासंगिकता क्या है?

- **बौद्ध पंथ के कुछ विचारों की आज भी प्रासंगिकता है-**

1. अहिंसा- वर्तमान हिंसा से ग्रस्त विश्व को बौद्ध पंथ राहत प्रदान कर सकता है।
2. बौद्ध धर्म के द्वारा प्रतिपादित मध्यम मार्ग, जिसे हम अष्टांगिक मार्ग के नाम से जानते हैं, वर्तमान भारत एवं विश्व की अधिकांश समस्याओं का निराकरण कर सकता है। वर्तमान विश्व की समस्या है- 'अतिवाद' अर्थात् अत्यधिक उपभोग। इस प्रवृत्ति ने पर्यावरण संकट से लेकर आतंकवाद तक सभी समस्याओं को जन्म दिया है।
3. बौद्ध पंथ ने जाति विभाजन को अस्वीकृत कर दिया था, इसलिए आधुनिक युग में भी यह प्रासंगिक बना रहा। 1956 ई. में भी डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने महारों को बौद्ध पंथ ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया।

➢ **मॉडल प्रश्न:**

1. बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का कारण बताइए।
2. क्या महात्मा बुद्ध को आप एक सामाजिक क्रांति का प्रवर्तक मानते हैं? अपने मत के पक्ष में उत्तर दीजिए।
3. बौद्ध धर्म किन कारणों से विश्व धर्म बना? क्या वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता है?

❑ मौर्य काल

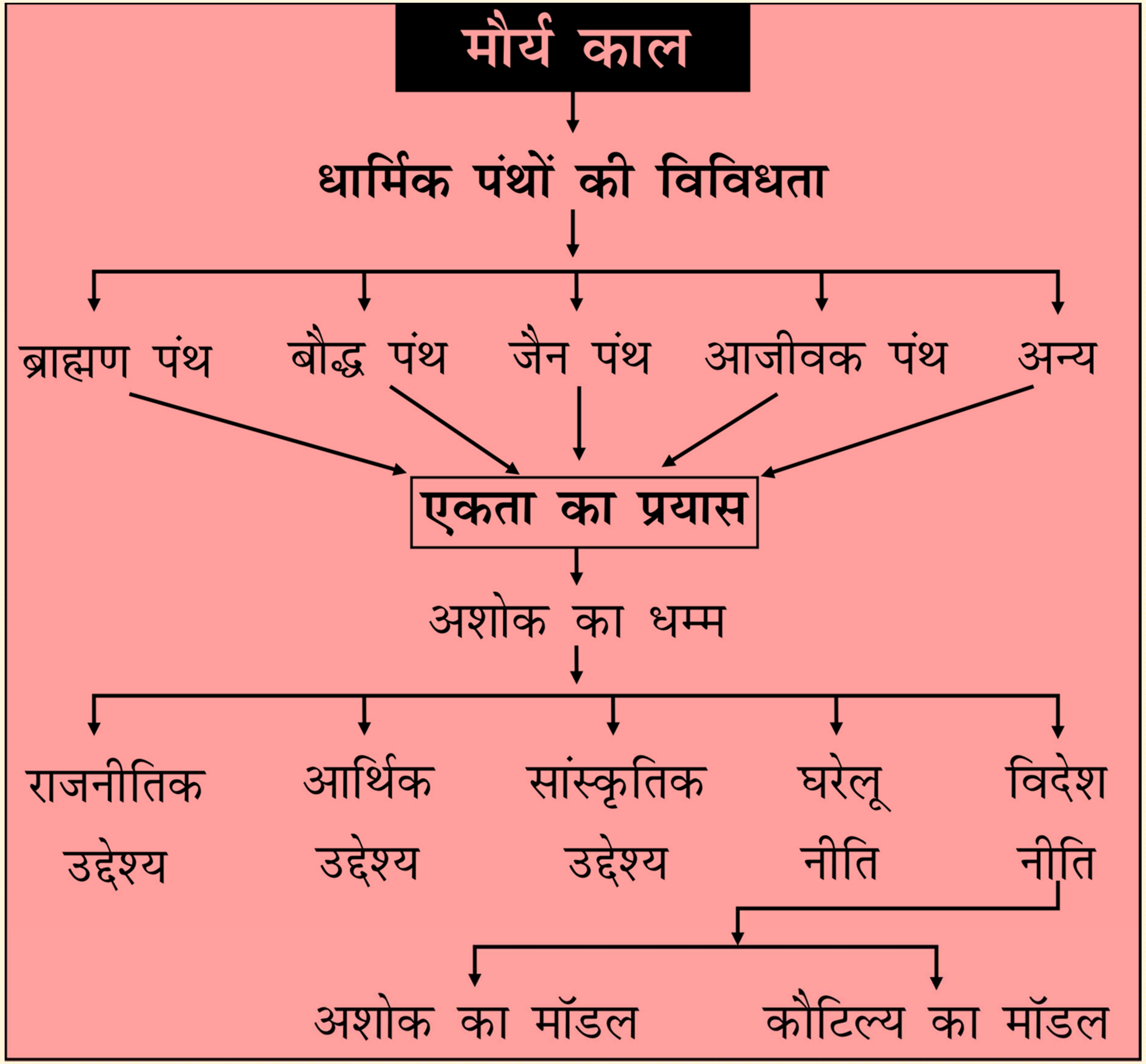

मौर्य काल
धार्मिक पंथों की विविधता
ब्राह्मण पंथ
बौद्ध पंथ
जैन पंथ
आजीवक पंथ
अन्य
एकता का प्रयास
अशोक का धम्म
राजनीतिक उद्देश्य
आर्थिक उद्देश्य
सांस्कृतिक उद्देश्य
घरेलू नीति
विदेश नीति
अशोक का मॉडल
कौटिल्य का मॉडल

❑ अशोक की धम्म नीति

➢ क्या अशोक एक समर्पित बौद्ध था?

- अशोक अपने व्यक्तिगत जीवन में एक बौद्ध था। उसके भाब्रु अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने बौद्ध पंथ के त्रिरत्न (बुद्ध, धम्म एवं संघ) में अपनी आस्था प्रकट की थी। परन्तु उसने जिस धम्म को प्रतिपादित किया, वह बौद्ध पंथ की सीमा में बंधा हुआ नहीं था, बल्कि वह सामाजिक एवं नैतिक आदर्शों को व्यक्त करता था, जो उत्तम जीवन के लिए आवश्यक था। उस धम्म नीति का बल निम्नलिखित कारकों पर रहा था-
- माता, पिता एवं गुरु की सेवा।
- नौकर, दास एवं पशुओं के प्रति करुणा का भाव।
- अल्प-व्यय एवं अल्प-संग्रह।
- क्रोध एवं निष्ठुरता से मुक्त होना आदि।

➢ अशोक की धम्म नीति निम्नलिखित उद्देश्यों से प्रेरित थी–

1. **राजनीतिक उद्देश्य**– राजनीतिक दृष्टि से इसका उद्देश्य एक विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए साम्राज्य की एकता को बनाए रखने के लिए एक संयोजक शक्ति की भूमिका निभाना था। उसके माध्यम से साम्राज्य की एकता और अखण्डता को बनाए रखना सम्भव होता।

2. **आर्थिक उद्देश्य**– आर्थिक दृष्टि से इसका बल पशुधन की सुरक्षा पर रहा था। वस्तुतः पशुधन की सुरक्षा कृषि अर्थव्यवस्था की माँग के अनुकूल थी, अतः अंहिसा की अवधारणा पर बल देकर इसने कृषि अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया।

3. **सांस्कृतिक उद्देश्य**– सांस्कृतिक दृष्टि से यह विविधता में एकता लाने का प्रयास था क्योंकि इसके माध्यम से विभिन्न धार्मिक पंथों के बीच टकराहट को रोका जा सकता था।

➢ अशोक की धम्म नीति का घरेलू नीति पर प्रभाव-

1. कम-से-कम दण्ड शक्ति का प्रयोग कर शासन का संचालन करना।
2. राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप पर बल देना।
3. कर्मठ प्रशासन एवं बेहतर गवर्नेंस पर बल दिया। उदाहरण के लिए, उसके अभिलेख से हमें यह ज्ञात होता है कि उसके अधिकारी किसी समय भी उससे मिल सकते थे।
4. अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए उसने कदम उठाए। इसके लिए उसने धम्म महामात्र नामक अधिकारी की नियुक्ति आरम्भ की, जो लोगों में धम्म नीति का प्रसार करता था।

- अशोक की घरेलू नीति की सफलता इस बात से ही निर्धारित की जा सकती है कि स्वतंत्र भारत की सरकार ने भी राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में अशोक चक्र को अपनाया।

➢ अशोक की धम्म नीति का विदेश नीति पर प्रभाव-

1. अशोक ने विदेश नीति का एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया। वह विश्व का प्रथम ऐसा शासक था जिसने युद्ध का विकल्प खोजने का प्रयास किया।
2. अपने 13वें वृहद् शिलालेख में उसने यह घोषित किया कि वह युद्ध विजय की नीति को छोड़कर धम्म विजय की नीति को अपना रहा है अर्थात् मेल-मिलाप की नीति।
3. उसने राजदूत की जगह धम्म दूत की नियुक्ति शुरू की। इसके माध्यम से अशोक ने सांस्कृतिक कूटनीति को जन्म दिया। उसने विभिन्न देशों में धार्मिक मिशन भेजे। वर्तमान में भी भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच संबंध का आधार सांस्कृतिक कूटनीति ही बना हुआ है।

4. अन्य मौर्य शासकों ने 'पश्चिम की ओर देखो की नीति' पर विशेष बल दिया था। वहीं अशोक ने पश्चिम की ओर देखो की नीति के साथ-साथ 'पूरब की ओर देखो' (Look East Policy) की नीति पर भी बल दिया। उदाहरण के लिए, उसने श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया में धार्मिक मिशन भेजे थे।

5. पिछले लगभग 2400 वर्षों में विश्व, भौतिक क्षेत्र में काफी आगे बढ़ चुका है, परन्तु नैतिक क्षेत्र में वह अशोक की शांति घोषणा से आगे नहीं बढ़ सका है।

➢ कौटिल्य की विदेश नीति की विशेषताएँ क्या हैं?

- विदेश नीति के मोर्चे पर कौटिल्य का दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी प्रतीत होता है। अशोक के आदर्शवाद के समानान्तर उसने अवसरवाद पर विशेष बल दिया।
- उसकी विदेश नीति 'राजमंडल व्यवस्था' पर आधारित है। इसमें पड़ोसी राज्यों को मित्र एवं शत्रु राज्यों में विभाजित किया गया है तथा उनके विषय में नीति निर्धारित की गई है। उसका मानना था कि आपका निकटस्थ पड़ोसी आपका शत्रु हो सकता है और आपके शत्रु का शत्रु आपका मित्र। उसी प्रकार, उसने इन राज्यों को मित्र का मित्र, शत्रु का मित्र, शत्रु का शत्रु आदि में विभाजित किया।

- अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रमुख विद्वान शिव शंकर मेनन का कहना है कि वेस्टफेलिया की संधि से 2000 वर्ष पूर्व ही कौटिल्य ने 'शक्ति सन्तुलन' की अवधारणा प्रस्तुत कर दी थी।
- भारत की विदेश नीति में अशोक एवं कौटिल्य दोनों की विरासत देखी जा सकती है। दोनों का अपना अलग-अलग महत्व है। जहाँ कौटिल्य की विदेश नीति एक ऐसे राज्य के लिए है जो साम्राज्य बनने की ओर अग्रसर है, वहीं अशोक की विदेश नीति एक बड़े साम्राज्य के लिए है जिसका बल विस्तार की जगह संगठन पर है।

मौर्योत्तरकालीन धर्म

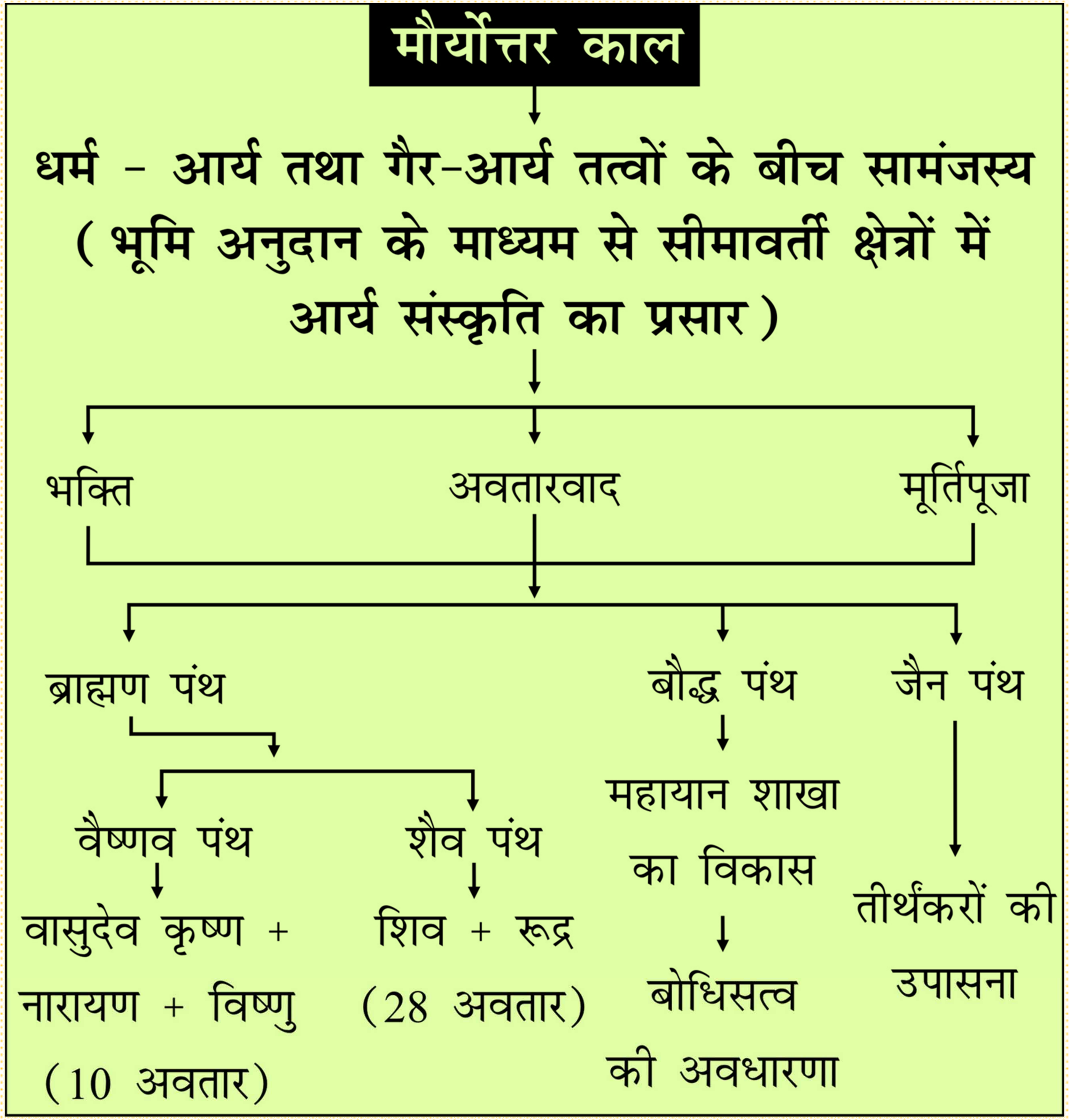

❑ मौर्योत्तरकालीन धर्म

- मौर्योत्तर काल में धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारण था- आर्य तथा गैर-आर्य तत्वों के बीच सामंजस्य। इसने धर्म के स्वरूप में निम्नलिखित परिवर्तन लाया -

  1. भक्ति की अवधारणा का विकास।
  2. अवतारवाद की परिकल्पना का विकास।
  3. मूर्तियों का निर्माण तथा उनकी उपासना।

- इन कारकों ने लगभग सभी धार्मिक पंथों पर अपना प्रभाव छोड़ा।

❖ ब्राह्मण पंथ

- **वैष्णव पंथ का विकास-** आर्य एवं गैर-आर्य तत्वों के मिश्रण से वैष्णव पंथ का विकास हुआ। वासुदेव कृष्ण एक गैर-आर्य देवता थे। वे मथुरा के 'पंच वृष्णि नायक' से सम्बद्ध थे। इन वृष्णि नायकों में वासुदेव कृष्ण, संकर्षण (बलराम), शाम्ब, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का विवरण मिलता है। प्रथम सदी के मथुरा के 'मोरा अभिलेख' से इनके विषय में हमें सूचना मिलती है। उसी प्रकार, पाणिनी के अष्टाध्यायी एवं छान्दोग्य उपनिषद से भी हमें वासुदेव कृष्ण की सूचना मिलती है। आगे वासुदेव कृष्ण का एकीकरण एक अन्य गैर-आर्य देवता, नारायण के साथ हो गया। इनकी उपासना हिमालय क्षेत्र में होती थी और इनके उपासक पशुचारक थे। फिर इन गैर-आर्य देवताओं के ऊपर विष्णु जैसे आर्य देवता को स्थापित कर दिया गया। इस प्रकार, वैष्णव पंथ का विकास हुआ।

- **शैव पंथ का विकास-** एक गैर-आर्य देवता के रूप में शिव की चर्चा हड़प्पा सभ्यता के काल में ही मिलती है। वहीं एक वैदिक देवता रूद्र का विवरण पहली बार ऋग्वेद में प्राप्त होता है। आगे इन दोनों देवताओं के बीच एकीकरण हो गया और फिर शैव पंथ का विकास हुआ।
- भक्ति की अवधारणा के साथ अवतारवाद की परिकल्पना भी जुड़ गई। विष्णु के 10 अवतार और शिव के 28 अवतारों की परिकल्पना की जाने लगी।

❖ बौद्ध पंथ

- भक्ति के प्रभाव से बौद्ध पंथ के अन्तर्गत महायान शाखा का विकास हुआ। महायान पंथ ने बौद्ध धर्म के स्वरूप को ही बदल दिया तथा इसे ब्राह्मण पंथों के निकट ला दिया। महायान शाखा पूर्व काल की हीनयान शाखा से निम्नलिखित रूप में भिन्न थी-

1. हीनयान शाखा में बुद्ध की ऐतिहासिकता स्पष्ट थी। उन्हें शिक्षक एवं उपदेशक के रूप में देखा जाता था, परन्तु महायान शाखा में उन्हें देवता के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई। इसके अंतर्गत बोधिसत्व की परिकल्पना विकसित हुई। बोधिसत्व वह है, जो निर्वाण प्राप्त करने की योग्यता रखता है, परन्तु वह अपने निर्वाण को टालता जाता है क्योंकि वह अपने से पहले सभी प्राणियों को निर्वाण प्रदान करना चाहता है। वह दूसरे के लिए दु:ख भोग रहा है। इस प्रकार, महायान का दृष्टिकोण अधिक आशावादी था। इसने हीनयान के विपरीत निर्वाण का दरवाजा सभी के लिए खोल दिया।

2. अतः बोधिसत्व के प्रति भक्ति की अवधारणा विकसित हुई और भक्ति से मूर्ति पूजा शुरू हो गई। जहाँ हीनयान बौद्ध पंथ में महात्मा बुद्ध से जुड़े हुए प्रतीक चिह्न की पूजा होती थी, वहीं अब बोधिसत्वों की मूर्तियाँ बनने लगीं।

❖ जैन पंथ

- जैन पंथ भी श्वेतांबर एवं दिगंबर दो शाखाओं में विभाजित हो गया था। श्वेतांबर शाखा ने मूर्ति पूजा को स्वीकार कर लिया था। फिर भी, जैन धर्म ने अपनी विशिष्टता बनाये रखी क्योंकि वह महावीर की शिक्षा से बहुत ज्यादा विचलित नहीं हुआ था। अब इस काल में तीर्थंकर, बोधिसत्व और ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ बनने लगीं।

प्रश्नः ‘ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में धर्म के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण भू-चिह्न बन गये।’ इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उत्तरः ईसा की आरंभिक शताब्दियों में धर्म के क्षेत्र में आर्य एवं गैर-आर्य तत्वों के बीच मिश्रण देखा गया। इसके परिणामस्वरूप धर्म का वह स्वरूप सामने आया जिसकी पहचान आगे हिन्दू धर्म के रूप में हुई।

भूमि अनुदान के कारण ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मानुयायी सभी सीमावर्ती क्षेत्रों में स्थापित हुए और जनजातीय तत्वों के सम्पर्क में आये। इसके परिणामस्वरूप आर्य एवं गैर-आर्य तत्वों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। ब्राह्मण पंथ में यज्ञ का प्रचलन था, परंतु जनजातीय तत्वों के प्रभाव में भक्ति का महत्व बढ़ गया। फिर भक्ति ने विविध धार्मिक पंथों पर अपना प्रभाव छोड़ा। इसके परिणामस्वरूप ब्राह्मण पंथ में वैष्णव भक्ति एवं शैव भक्ति का विकास हुआ, वहीं बौद्ध पंथ के अन्तर्गत महायान शाखा का विकास हुआ। अन्त में, जनजातीय प्रभाव में मूर्ति पूजा को प्रोत्साहन मिला तथा बुद्ध, बोधिसत्व, जैन तीर्थंकरों, विष्णु तथा शिव की मूर्तियाँ बनने लगीं।

फिर यह वह काल था जब कुछ गैर-आर्य देवता भी आर्य पंथ में शामिल होते चले गये। इसके परिणामस्वरूप धर्म का वह स्वरूप निखरकर सामने आया जिसे हिन्दू धर्म के रूप में पहचाना गया। ये देवता थे- शिव, कुमार कार्तिकेय, मातृदेवी, गणेश, पशु, वृक्ष आदि।

इस प्रकार, ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में सामाजिक एकीकरण ने धर्म के क्षेत्र में परिवर्तन लाया और फिर यह परिवर्तन भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण भू-चिह्न बन गया।

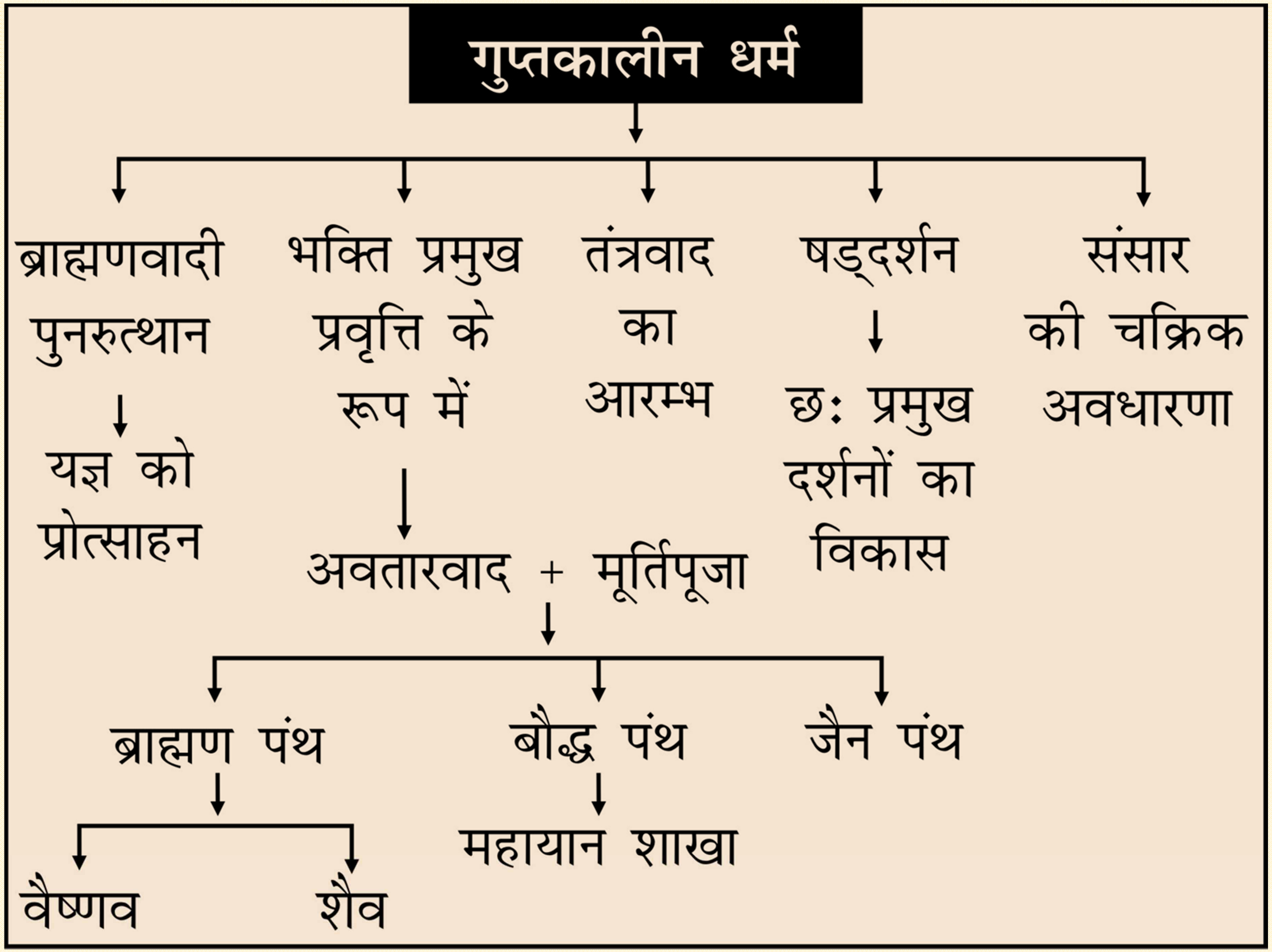
गुप्तकालीन धर्म
ब्राह्मणवादी पुनरुत्थान
यज्ञ को प्रोत्साहन
भक्ति प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में
अवतारवाद + मूर्तिपूजा
ब्राह्मण पंथ
वैष्णव
शैव
बौद्ध पंथ
महायान शाखा
जैन पंथ
तंत्रवाद का आरम्भ
षड्दर्शन
छः प्रमुख दर्शनों का विकास
संसार की चक्रिक अवधारणा

❑ गुप्तकालीन धर्म

- गुप्तकालीन धर्म में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं-

➢ ब्राह्मणवादी पुनरुत्थान

- चूँकि इस काल में ब्राह्मणवादी पुनरुत्थान हुआ था, इसलिए यज्ञ का महत्व बढ़ गया। गुप्त शासकों में दो शासक; यथा- समुद्रगुप्त एवं कुमारगुप्त जैसे शासकों को अश्वमेध यज्ञ करने का श्रेय दिया जाता है। उसी प्रकार, सामान्य गृहस्थों में भी हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ एवं पंच महायज्ञ प्रचलित थे।

➢ भक्ति प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में

- ब्राह्मण एवं गैर-ब्राह्मण तत्वों के मध्य सामंजस्य के परिणामस्वरूप भक्ति की अवधारणा विकसित हुई। भक्ति की अवधारणा के साथ अवतारवाद एवं मूर्तिपूजा की परिकल्पना भी जुड़ गई। अवतारवाद की परिकल्पना में विभिन्न विरोधी तत्वों के मध्य सामंजस्य लाने की कोशिश की गई। भक्ति की अवधारणा ने लगभग सभी समकालीन पंथों को प्रभावित किया। उदाहरण के लिये, ब्राह्मण धर्म के अंतर्गत वैष्णव भक्ति एवं शैव भक्ति का विकास हुआ। ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ भी मंदिर में स्थापित की गईं और मूर्ति पूजा आरम्भ हो गई। गुप्तकाल में ही आकर त्रिदेव की परिकल्पना स्थापित हुई अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की परिकल्पना। गुप्त शासकों ने वैष्णव पंथ को संरक्षण दिया।
- गुप्तकाल में गैर-ब्राह्मण देवताओं की उपासना भी लोकप्रिय हो गयी थी। उदाहरण के लिए, मातृदेवी की पूजा, पशु पूजा, सर्प पूजा इत्यादि।

➢ तंत्रवाद का आरम्भ

- सम्भवतः गैर-आर्य तत्वों के प्रभाव से धर्म के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्ति देखी गई, उसे हम तंत्रवाद के रूप में पाते हैं। वस्तुतः गुप्तकालीन धर्म का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण था स्त्री तत्वों का बढ़ता हुआ महत्व अर्थात् इस प्रकार की अवधारणा विकसित होने लगी थी कि पुरुषों की क्रियाशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए स्त्रियों का साहचर्य आवश्यक है। उदाहरण के लिये, विष्णु के साथ लक्ष्मी जुड़ गईं तथा शिव के साथ पार्वती। हड़प्पा सभ्यता में स्त्री की पूजा कुमारी के रूप में होती थी, परन्तु गुप्तकाल में मातृदेवियाँ देवताओं से संबद्ध थीं। इसके परिणामस्वरूप तन्त्रवाद को भी प्रोत्साहन मिला।

➢ षड्दर्शन

- षड्दर्शन अथवा छः प्रमुख दर्शनों का विकास। वस्तुतः गुप्तकाल तक विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण एवं चिंतन प्रचलित हो गए थे। ये दृष्टिकोण एवं चिंतन षड्दर्शन के रूप में स्थापित हो गए। ये इस प्रकार हैं- सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, पूर्व-मीमांसा एवं उत्तर-मीमांसा।
- सांख्य- सांख्य दर्शन सबसे प्राचीन दर्शन है। इसके प्रवर्तक कपिल हैं। इस दर्शन का मूल ग्रंथ महर्षि कपिल का 'सांख्य सूत्र' है। प्राचीन सांख्य दर्शन के अनुसार जगत की सृष्टि के लिये दैवीय तत्व का अस्तित्व मानना आवश्यक नहीं है क्योंकि जगत की उत्पत्ति ईश्वर से नहीं, अपितु प्रकृति से होती है। किन्तु आगे चलकर प्रकृति के साथ पुरुष भी जुड़ गया। पुरुष का अर्थ है जीव। जैन दर्शन सांख्य दर्शन के निकट है।

- **योग-** दूसरा प्रमुख दर्शन योग-दर्शन है। भारतीय दर्शनों में संभवत: योग से ही संसार में सबसे अधिक लोग परिचित हैं। इस दर्शन में आत्म-नियंत्रण एवं आत्म-यातना को सर्वोपरि माना जाता है। योग दर्शन के अनुसार ईश्वर सृष्टि का रचयिता नहीं है, बल्कि एक उत्कृष्ट या ऊर्जस्वि आत्मा है जो कभी भी पदार्थ में विलीन हुए बिना अस्तित्व में रही है। इसके प्रवर्तक **पतंजलि** हैं जिन्होंने योगसूत्र की रचना की।
- **न्याय-** यह तर्क पद्धति के माध्यम से सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। इसके प्रवर्तक **अक्षपाद गौतम** हैं। इस दर्शन का मूल ग्रंथ गौतम कृत 'न्याय सूत्र' है। न्याय का शाब्दिक अर्थ होता है- विश्लेषणात्मक जाँच। इस दर्शन में तर्क के प्रयोग का जो महत्व प्रतिपादित हुआ है उससे भारतीय विद्वान प्रभावित होकर तार्किक रीति से सोचने और बहस करने की ओर झुके।

- **वैशेषिक-** इस दर्शन का वैशेषिक नामकरण इस आधार पर है क्योंकि यह ब्रह्माण्ड को 'विशेषों' में विभाजित करता है। यह एक प्रकार का परमाणु दर्शन है और इसके प्रवर्तक **उलूक कणाद** हैं। यह दर्शन विभिन्न प्रकार की परम वस्तुओं में अंतर करने का प्रयत्न करता है और सभी वस्तुओं को महाभूतों, अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के अंतर्गत, जो परमाणु, दिक्, काल, मन और आत्मा के रूप में विद्यमान है, में वर्गीकृत करता है। जब इन पंचमहाभूतों के परमाणु आपस में जुड़ने लगते हैं तब जगत की सृष्टि का प्रारंभ होता है और जब उनका विघटन हो जाता है तो जगत का अंत हो जाता है।
- **मीमांसा-** इसका अर्थ है वेदों की व्याख्या तथा इसका लक्ष्य है वेदों को पुनर्प्रतिष्ठित करना। इसका मूलग्रंथ **जैमिनी** का 'पूर्व मीमांसा सूत्र' है। मीमांसा दर्शन का संबंध वैदिक धर्म के व्यावहारिक पक्ष से है। इसमें मुख्य रूप से पवित्र अनुष्ठानों तथा उनसे प्राप्त होने वाले प्रतिफलों का विवेचन किया जाता है।

- **उत्तर मीमांसा या वेदांत-** इसका अर्थ है वेदांत दर्शन तथा इसका आधार है उपनिषद्। ईसा पूर्व दूसरी सदी में संकलित **बादरायण का ब्रह्मसूत्र** इस दर्शन का मूल ग्रंथ है। दर्शन का मूल आरंभिक उपनिषदों में पाया जाता है। इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म ही सत्य है, अन्य हर वस्तु माया यानि अवास्तविक है। आत्मा तथा ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है। अतः जो कोई आत्मा को या अपने आप को पहचान लेता है उसे ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है एवं मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। ब्रह्म तथा आत्मा दोनों शाश्वत और अविनाशी हैं। आगे शंकराचार्य ने **उपनिषद, ब्रह्मसूत्र** एवं **भागवत गीता** पर टीकाएँ लिखीं। इसे शंकर का वेदान्त कहा जाता है।

➢ संसार की चक्रिक अवधारणा

- इस काल तक ब्राह्मणवादी अवधारणा में सृष्टि के विकास की एक चक्रिक अवधारणा का विकास हुआ। इसके तहत चार युगों से मिलकर एक महायुग बनता है और 71 महायुगों का मनवंतर। कुल 14 मनवंतरों की परिकल्पना की गई। प्रत्येक मनवंतर के बाद इस सृष्टि का विनाश होता है और एक नए मनु पैदा होते हैं। वर्तमान में हम सातवें मनवंतर से गुजर रहे हैं और हमारे पूर्वज मनु हैं।

गुप्तोत्तरकालीन धर्म

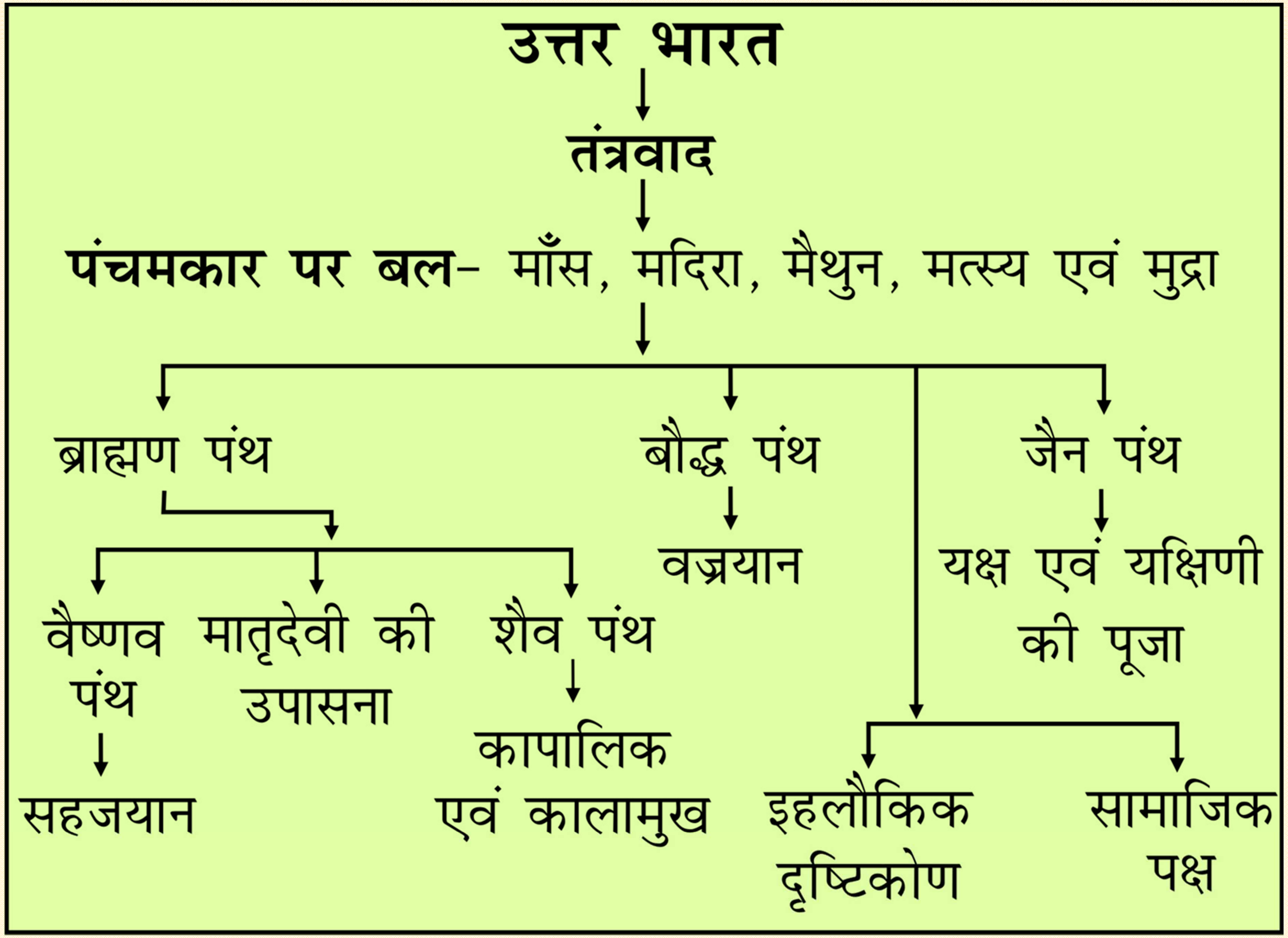

❑ गुप्तोत्तरकालीन धर्म

- उत्तर भारत में धर्म के क्षेत्र में तंत्रवाद का प्रभाव बढ़ता गया। तंत्रवाद में वामाचार एवं पंचमकारों की साधना पर बल दिया जा रहा था। इसने लगभग सभी महत्वपूर्ण धार्मिक पंथों पर अपना प्रभाव छोड़ा-

❖ ब्राह्मण पंथ

- वैष्णव पंथ- तंत्रवाद के प्रभाव में इसके अन्तर्गत सहजयान शाखा का विकास हुआ।
- शैव पंथ- इसके अन्तर्गत कापालिक एवं कालामुख जैसे अतिवादी सम्प्रदाय विकसित हुए। ये अपने शरीर में चिता की भस्म मलते थे, नर कपाल में भोजन करते थे तथा पंचमकारों की साधना करते थे।
- मातृदेवी की उपासना- मातृदेवी का तांत्रिक पूजा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी पूजा पर भी तंत्रवाद का गहरा प्रभाव देखा गया।

❖ बौद्ध पंथ

- बौद्ध धर्म में तंत्र-मंत्र के प्रभाव से 'वज्रयान' नामक पंथ का उद्‌भव हुआ। वज्रयान जादुई शक्ति को प्राप्त करके मुक्त होने की कल्पना करता है। इस पंथ में पुरुष के साथ स्त्री की कल्पना जुड़ गई। अवलोकितेश्वर (बोधिसत्व) के साथ प्रज्ञापारमिता तथा बुद्ध के साथ तारा जुड़ गईं।

❖ जैन पंथ

- जैन पंथ पर तंत्रवाद का प्रभाव सबसे कम देखा गया, किन्तु इसके अन्तर्गत भी यक्ष एवं यक्षिणी की उपासना आरम्भ हो गई। उन्होंने अपनी पूजा पद्धति में तीर्थंकरों के अलावा यक्ष-यक्षिणियों को भी शामिल किया था।

➢ इहलौकिकता पर बल

- तंत्रवाद का प्रमुख बल पारलौकिकता की जगह इहलौकिकता पर रहा था। इसमें सांसारिक बातों को अधिक महत्व दिया गया था क्योंकि इसमें साँप एवं बिच्छू के काटने पर भी मंत्र का प्रभाव था।

➢ सामाजिक पक्ष

- ब्राह्मणवादी पंथों के विपरीत तंत्रवाद का दृष्टिकोण अधिक समतामूलक था। तांत्रिक साधना में लिंग तथा जाति का भेद नहीं किया गया है। यह साधना समान रूप से स्त्री तथा शूद्रों के लिये उपलब्ध थी। इस वजह से निम्न जातियों तथा जनजातीय क्षेत्रों में तांत्रिक धर्म को प्रोत्साहन मिला। इसके अन्तर्गत महिला को भी गुरु का पद प्राप्त हो जाता है।

➢ दक्षिण भारत

- इस काल में दक्षिण भारत में भक्ति का विकास हुआ, इसे भक्ति आंदोलन का नाम दिया जाता है। वस्तुतः उत्तर से पुराणों पर आधारित भक्ति दक्षिण आई और दक्षिण में संगम साहित्य के 'प्रेम' तत्व से जुड़ गई। अतः भक्ति का भावनात्मक रूप प्रकट हुआ।
- भक्ति आंदोलन को प्रेरित करने में अलवार (विष्णु पूजक) तथा नयनार (शिव पूजक) संतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। परम्परा के अनुसार 12 अलवार संत थे, इनमें एक पांड्य शासक कुलशेखर एवं एक महिला संत अंदाल भी थीं। उसी प्रकार, 63 नयनार संत थे, इन संतों में अप्पर, नामसंबंदर, सुन्दरमूर्ति आदि प्रमुख थे। अलवार संतों के भजन 'प्रबन्धम्' नामक ग्रंथ में संकलित हुए। दक्षिण में प्रबन्धम् को वेदों के समानान्तर सम्मान प्राप्त है। उसी प्रकार, नयनार संतों की जीवनी को 12वीं सदी में 'पेरियपुराणम्' नामक ग्रंथ में संकलित किया गया।
- अलवार और नयनार संतों की मिश्रित पृष्ठभूमि थी अर्थात् वे उच्च जाति एवं निम्न जाति, दोनों से आए थे, किन्तु जाति व्यवस्था के प्रति उनके मन में समर्पण का भाव नहीं था। इसलिए कहीं-न-कहीं वे धार्मिक समानता के साथ-साथ सामाजिक समानता के लिए भी प्रतिबद्ध थे।

❑ पूर्व मध्यकालीन धर्म

➢ उत्तर भारत

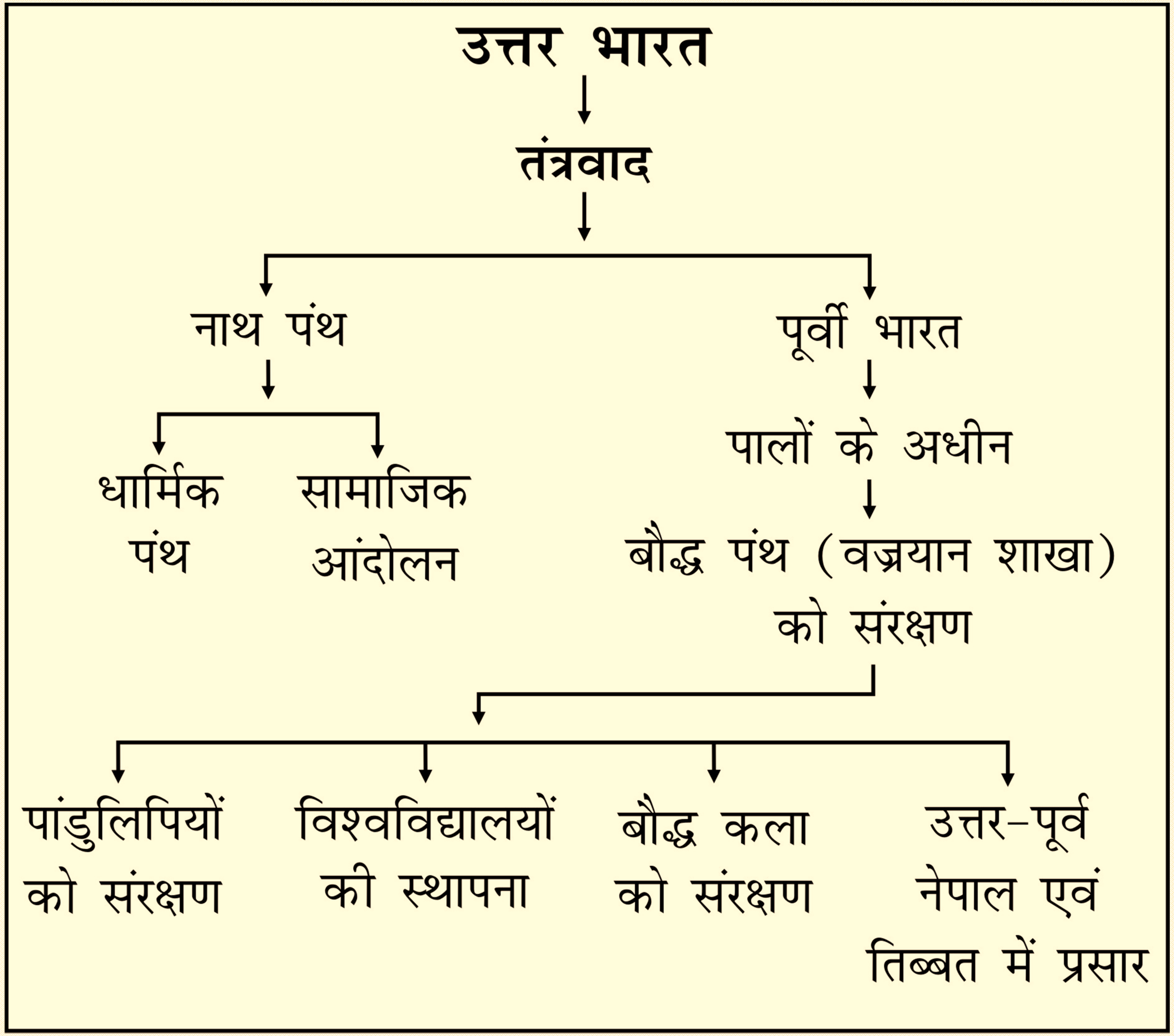

❑ पूर्व मध्यकालीन धर्म

➢ उत्तर भारत

- पूर्व मध्य काल तक उत्तर भारत में तंत्रवाद की एक अति महत्वपूर्ण शाखा विकसित हुई, इसे नाथपंथ के रूप में जाना जाता है। इसके संस्थापक 'मत्स्येन्द्रनाथ' थे। फिर आगे इसके महत्वपूर्ण संत गोरखनाथ हुए। नाथपंथियों ने नैतिक आचरण पर बल दिया, इसलिए हम उन्हें धर्म सुधारक के रूप में भी देख सकते हैं। वहीं दूसरी तरफ नाथपंथ ने जाति विभाजन को अस्वीकार कर दिया। अतः हम इन्हें समाज सुधारक के रूप में भी देख सकते हैं। नाथपंथ ने निम्न वर्ग एवं अछूतों के लिए भी अपना दरवाजा खोल दिया था।

➢ पूर्वी भारत

- इस काल तक उत्तर भारत में बौद्ध पंथ का लगभग सफाया हो गया था। इसके निम्नलिखित कारण थे–

1. महायान शाखा के विकास के बाद बौद्ध पंथ अपने को ब्राह्मण पंथ से अलग नहीं कर सका।
2. हूणों के आक्रमण के कारण अनेक बौद्ध भिक्षुओं की हत्या हो गई।
3. शंकराचार्य के द्वारा हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान किया गया। इसके कारण भी बौद्ध पंथ का पतन हुआ। ह्वेनसांग ने उत्तर भारत में बौद्ध विहारों को पतनशील अवस्था में पाया था।

- परन्तु उस काल में भी बंगाल में पाल शासकों के अधीन बौद्ध पंथ फलता–फूलता रहा था। पाल शासकों ने निम्नलिखित रूप में बौद्ध पंथ को प्रोत्साहन दिया–

1. पाल शासकों ने वज्रयान बौद्ध शाखा के लोकप्रिय स्वरूप को समझा और अशोक की तरह ही उसे संरक्षण दिया।
2. पाल शासकों ने अतिश दीपांकर जैसे बौद्ध विद्वानों को संरक्षण दिया और बौद्ध धर्म से संबंधित पांडुलिपियों को संरक्षण दिया।
3. पाल शासकों ने नालंदा विश्वविद्यालय को संरक्षण दिया तथा विक्रमशिला, ओदन्तपुरी और सोमपुरा जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना की, जो बौद्ध शिक्षा केन्द्र के रूप में स्थापित हुए।
4. उन्होंने उत्तर-पूर्व, नेपाल एवं तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रसार किया।

- इसलिए अगर भारत में बौद्ध पंथ जीवित रहा, तो पालों के संरक्षण के कारण।

प्रश्न- भारत में बौद्ध धर्म के इतिहास में पाल काल अति महत्त्वपूर्ण चरण है। विश्लेषण कीजिए। (UPSC-2020)

उत्तर- पाल साम्राज्य को बंगाल के इतिहास में स्वर्ण युग माना जाता है। स्वर्ण युग मानने के पीछे के कारणों में से एक इस अवधि के दौरान बौद्ध धर्म का विकास था, जिसे पाल शासकों ने पूरे मन से संरक्षण दिया।

पाल शासन काल में अनेक मठों एवं विश्वविद्यालयों का निर्माण करवाया गया, जैसे- ओदंतपुरी का मठ, विक्रमशिला विश्वविद्यालय, नालंदा विश्वविद्यालय आदि। ये केंद्र बौद्ध शिक्षा के साथ-साथ धर्मनिरपेक्ष अध्ययन के महान केंद्रों के रूप में उभरे।

फिर, देवपाल ने नालंदा विश्वविद्यालय के रखरखाव के लिए पाँच गाँवों की आय दान में दी। इस अवधि के दौरान अन्य शिक्षण केंद्रों; जैसे जगद्दल, सोमपुरा, इराइकूट आदि का निर्माण किया गया। सुवर्णद्वीप के राजा, बालपुत्रदेवा ने पाल शासन के काल में नालंदा में एक मठ का निर्माण करवाया। इस अवधि के दौरान बौद्ध विषयों पर कई पांडुलिपियां और वज्रयान बौद्ध देवताओं की छवियों को ताड़ के पत्तों पर उकेरा गया था। उदाहरण के लिए, अष्टसहस्रिका प्राजापरमिता।

पाल वंश के दौरान वज्रयान बौद्ध धर्म के आगमन तथा पाल शासकों के द्वारा संस्थानों को दिए गए संरक्षण के कारण यह अवधि बौद्ध धर्म के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। इस काल में वज्रयान बौद्ध धर्म बंगाल से तिब्बत, मंगोलिया और मध्य एशिया के कुछ हिस्सों में फैल गया। अतः निश्चय ही पाल शासन काल भारत में बौद्ध धर्म के विकास का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है।

➢ दक्षिण भारत

12वीं सदी

रामानुज

भक्ति आंदोलन के स्वरूप में परिवर्तन

↑

10वीं सदी के पश्चात्

आचार्यों का आगमन

↑

7वीं -11वीं सदी

(अलवार एवं नयनार)

लोकप्रिय आंदोलन, धार्मिक समानता के साथ-साथ

सामाजिक समानता की बात

➢ दक्षिण भारत

- **भक्ति आंदोलनः**

- दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन का आधार अलवार और नयनार संतों ने तैयार किया था। आगे फिर आचार्यों का आगमन हुआ। ये आचार्य ब्राह्मण थे, अतः ब्राह्मण आचार्यों के अधीन भक्ति आंदोलन के स्वरूप में परिवर्तन आया।

○ **आचार्य रामानुज का आगमन एवं भक्ति आन्दोलन के स्वरूप में परिवर्तन–**

1. रामानुज ने वेद और प्रबन्धम् की परम्परा के बीच सामन्जस्य लाया। इस तरह भक्ति संतों की उदार धार्मिक परंपरा और ब्राह्मणवाद के बीच एक प्रकार का सामंजस्य लाया गया।
2. रामानुज ने धार्मिक क्षेत्र में सभी की समानता स्वीकार की, परन्तु सामाजिक क्षेत्र में वर्ण विभाजन को बने रहने दिया। रामानुज ने एक प्रकार से सामाजिक रूढ़िवाद को प्रोत्साहन दिया।
3. रामानुज ने विशिष्टाद्वैत चिन्तन के माध्यम से भक्ति आंदोलन को एक स्पष्ट दर्शन का आधार दिया।

➢ शंकर के अद्वैत चिंतन में रामानुज के द्वारा लाए गए संशोधन-

1. शंकर के अनुसार, ब्रह्म और जीव एक ही तत्व से निर्मित हैं और दोनों एक हैं। वहीं रामानुज के अनुसार, यद्यपि दोनों एक ही तत्व से निर्मित हैं, परन्तु एक नहीं हैं। ब्रह्म अगर 'परिमाण' है, तो जीव उसका 'गुण'।
2. शंकर के अनुसार, जीव की मुक्ति के लिए ज्ञान आवश्यक है, परन्तु रामानुज के अनुसार यद्यपि ज्ञान का महत्व है, परन्तु जीव की मुक्ति के लिए ईश्वर की कृपा भी आवश्यक है।
3. शंकर के अनुसार जीव की मुक्ति ब्रह्म में लीन हो जाने में है, वहीं रामानुज के अनुसार, जीव की मुक्ति ब्रह्म में लीन होने में नहीं है, बल्कि उसके निकट रहकर मिलन के इस आनंद को महसूस करने में है।

➢ शंकराचार्य की ऐतिहासिक भूमिका अथवा शंकराचार्य को हैंदवधर्मोद्धारक क्यों कहा जाता है?

- शंकराचार्य 9वीं सदी में केरल तट पर पैदा हुए तथा उन्होंने धर्म के क्षेत्र में सक्रियता दिखाई तथा कुछ ऐसे परिवर्तन लाए कि उन्हें 'हैंदवधर्मोद्धारक' के नाम से जाना गया। शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए निम्नलिखित कदम उठाए–

1. उन्होंने अद्वैत दर्शन को पुनर्स्थापित कर हिंदू धर्म की वैचारिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि को मजबूत किया।
2. जनसामान्य के बीच उन्होंने मूर्ति पूजा को स्वीकृति दी। दूसरे शब्दों में, उन्होंने इस सृष्टि के रचियता के रूप में ब्रह्मा, पालनहार के रूप में विष्णु तथा संहारक के रूप में शिव की अवधारणा दी।

3. हिन्दू धर्म की भावात्मक एकता के लिए उन्होंने भारत के चार छोरों पर चार मठों का निर्माण करवाया। उदाहरण के लिए, उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में श्रृंगेरी, पूर्व में जगन्नाथ पुरी एवं पश्चिम में द्वारका।

4. शंकराचार्य ने बौद्ध संघ के मॉडल पर हिंदू धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए ब्राह्मण संन्यासियों का एक संगठन तैयार किया तथा उन्हें बौद्ध और जैन चिन्तकों से खुले शास्त्रार्थ की प्रेरणा दी।

*****

END

Thank You!